# मनुष्य बनो

22 5 89 3/89

बा० मू०
१२.००

शरणागति

शुभ संकल्प,

क्षमा,

प्रेम,

निष्काम कर्म,

ब्रह्मचर्य पालन,

प्रेरक
दयाल फकीरचन्दजी महाराज
मानवता मन्दिर होशियारपुर (पंजाब)

& 84

# 'मनुष्य बनो' के नियम

१—शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिकता के नियमों का वास्तविक दृष्टि-कोण से प्रचार करना और प्रेम,सभ्यता,आदर, शिष्टाचार,सदाचार सहनशीलता और संयम की शिक्षा देना इसका मुख्य उद्देश्य है। मनुष्य बनना और बनाना

२—सन्त महात्माओं और ऋषियों की वाणी को सरल,सुबोध और साधारण भाषा में प्रचार करना।

३—सामाजिक उन्नति कारक तथा देशहित कारक लेखों को भी स्थान दिया जायेगा।

४—किसी धर्म पंथ या सम्प्रदाय के खण्डन सम्बन्धी लेख नहीं छापे जायेंगे।

५—यह पत्र प्रत्येक मास की १५ तारीख को प्रकाशित हुआ करेगा।

६—लेखों के घटाने बढ़ाने और छापने न छापने का अधिकार सम्पादक को होगा। लेख सम्पादक के नाम भेजे जॉय।

७—ग्राहकों को पत्र लिखते समय ग्राहक नम्बर व पता साफ-साफ अवश्य लिखना चाहिये। उत्तर के लिये जवाबी कार्ड आना चाहिये वी० पी० पी० से पत्रिका नहीं भेजी जायगी। इसका वार्षिक मूल्य १५-०० है।

८—यदि किसी मास का पत्र ठीक समय पर न पहुँचे तो पहले अपने यहाँ डाकखाने से पूछताछ करके वहाँ से जो उत्तर मिले व अगला अंक निकलने से एक सप्ताह पूर्व तक कार्यालय में पहुंचने पर ही दूसरी प्रति विना मूल्य भेजी जा सकेगी।

९—प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होने की सूचना, मनीआर्डर आदि मैनेजर के नाम से भेजनी चाहिये। मनीआर्डर कूपन पर अपना पता साफ-साफ लिखना चाहिये। और पते की तबदीली भी।

—प्रकाशक

R S.

ओ३म् पूर्णमद पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते ॥

# मनुष्य बनो


| वर्ष ३७ | मार्च, १९८९ | अङ्क ६ |
|---|---|---|


"मैं हूँ सन्त चरण अभिलाषी"

नहीं भक्ति नहीं ज्ञान का भूखा, नहीं कर्म का भाषी मैं
ढूंढ रहा अपने अन्दर, नहीं मथुरा नही काशी मैं
चरण धूल पाऊं सन्तन की, मिट जाये चौरासी मैं
चलते फिरते सन्त है तीरथ, मरे नहीं अविनासी मैं
उत्तम भाग्य दर्शन सन्तन के, जन्म-जन्म मल नासी मैं
सन्त दृष्टि जब पड़े किसी पर, कटे कर्म की फाँसी मैं
सन्त प्यार करें जिस जन से, दुनियाँ उसकी दासी मैं
सन्त वचन काटें भ्रम जाला, हृदय जोत प्रकाशी मैं
काल कर्म का खत्म अंधेरा, सन्त हैं पूरणमासी···मैं
सन्त वचन कभी जाये न खाली 'गाफिल' दुविधा नासी···मैं

१४-३-८९ होशियारपुर से प्रस्थान

१५-३-८९ बनवारीपुर श्री जयचन्द्र त्यागी बनवारीपुर
दोपहर ३ बजे सत्संग

१६-३-८९ प्रातःकाल मेरठ के लिये प्रस्थान श्री ब्रह्मसिंह C-48 डिफेन्स, कालोनी मवाना रोड मेरठ।
सत्संग ५ बजे साँय

१७-३-८९ प्रातःकाल से मुजफ्फरनगर के लिये प्रस्थान श्री उपेन्द्र बतरा, लाहिया बाजार मुजफ्फरनगर।

२०-३-८९ १७-साँयकाल सत्संग
१८ प्रातःकाल सत्संग
१९ प्रातःकाल सत्संग
२० प्रातःकाल निकटवर्ती गाँव में सत्संग

२१-३-८९ बुलन्दशहर के लिये प्रस्थान
कु० आदर्श सक्सैना म० नं० १३शेखराय बुलन्दशहर

२२-३-८९ अलीगढ़ के से लिये प्रस्थान

२५-३-८९ २३-सायंकाल सत्संग
२४-प्रातःकाल सत्संग दयाल नगर
२५-प्रातःकाल सत्संग अलीगढ़

२६-३-८९ दहली से होशियारपुर को प्रस्थान।

# राधास्वामी नाम-ध्वनि

राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।
अलख अगम और अनामी ।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।

परम सन्त का रूप धरा, जीवों पर उपकार किया ।
सीधा सच्चा मार्ग दिया, आये धुर पद धामी ।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।

राम भी हो और कृष्ण भी तुम ।
तुम महावीर और बुद्ध गौतम ।
अक्षर, ब्रह्म और पुरुषोत्तम, सब नामों में अनामी ।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।

मानवता का किया प्रचार, निज अनुभव का दे दिया सार
ऐसे गुरु को बारम्बार, नमामि, नमामि, नमामि ।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।

दाता दयाल के प्यारे तुम, मानव के रखवारे तुम ।
निर्गुण और सगुण भी तुम सबके अन्तर्यामी ।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।

# अपील

हमने अपने ग्राहक भाइयों से पहले भी निवेदन किया था कि जिन्होंने अपना वार्षिक शुल्क नहीं भेजा है वह शीघ्रता-शीघ्र भेजने की कृपा करें। लेकिन इस पर हमारे ग्राहक-बन्धुओं ने कोई ध्यान नहीं दिया। जिसकी वजह से हमें पत्रिका के संचालन में काफी परेशानियों का सामना करना पड़ रहा है।

यदि आप चाहते हैं कि यह पत्रिका चलती रहे और हम गुरू के वचनो को फैलाते रहें तो हमें अपना-अपना शुल्क भेज कर सहयोग प्रदान करें। साथ ही पत्रिका के ग्राहक बढ़ाने में हमारी मदद करें। यह कार्य केवल गुरू के प्रवचनों को एवं उनकी शिक्षा का प्रचार करने हेतु किया जाता है ताकि जिज्ञासू उनसे लाभ उठाकर अपना जीवन स्वच्छ एवं सरल बना सकें।

—प्रकाशक

अपना गौरव तथा अपनी शक्ति प्रदर्शित करने के अनेक मार्ग लोगों ने खोज निकाले हैं। पर यह समझना चाहिए कि जो वस्तु अपने लिये दुःखदायी और हानिप्रद हो सकती है उसे दूसरों पर आरोपित करना उचित नहीं है। जिससे किसी का अहित हो और पीड़ा पहुंचे, उसे ही अधर्म कहा जाता है। अधर्म जीवन की आवश्यकता नहीं है। उसमें कुछ शक्ति भी नहीं है। वह तो पराभूत है।

गतांक से आगे

वह भी भूल से खाली नहीं है क्योंकि मैं सत्य वक्ता हूँ मुझे न किसी का पक्ष है और न मैं किसी पर आक्षेप या उसका खण्डन करता हूं जिस प्रकार वेदान्ती परमार्थिक दृष्टि से वेद-को मिथ्या कहता हुआ भी वेद को नहीं छोड़ता वैसा ही इस समय मुझे भी समझ लो । मैं तुमसे क्या कहूं ? संसार में बहुत कम ऐसे मनुष्य उत्पन्न हुए हैं जो मेरी बातों की समझ-बूझ रखते हैं । मेरी वाणी सुनो

वेद हमारा भेद है, हम वेदों के माँह ।
वेद बतावे भेद को, हमें बताबे नाँह ।।

केवल इतनी सी बात है जिसको तुम समझ लो और तुम्हारा भ्रम जाता रहेगा । वेद भेद को तो बताता है और यह भेद संसार का ज्ञान है जिसके सहारे काल ने रचना को रच रक्खा है । हमारे रूप का ज्ञान किसी और वेद में है जिस को मैं स्वसम्वेद कहता हूं ।'

सर्वाजित का संशय जो दूर हो गया था कबीर साहब के अन्तिम वचनों को सुनकर फिर बढ़ गया ।

वह बोला –"भगवन् ! यह आपने कहते-कहते क्या कह दिया । यह स्वसम्वेद क्या है इसका तो मैंने आज तक नाम भी नहीं सुना ।"

## स्वसम्वेद का अंग

कबीर साहब बोले –"यही तो बात है जिसे मैं तुमको बताना चाहता हूँ ।"

सर्वाजित ने पूछा "यह क्या वस्तु है ?"

कबीर साहब ने कहा "यह आन्तरिक विद्या है जोप्रत्येक मनुष्य के घट में विद्यमान है जिसका किसी को पता नहीं है यह घट की विद्या है, ग्रंथों की विद्या नहीं है । यह गुरू और शिष्य में परम्परा से क्रमशः गुरू शिष्य द्वारा चली आ रही

है। जब मनुष्य बाह्य विद्याओं से उकता जाता है उस समय स्वयं उसके चित्त के भीतर विशेष प्रकार की फुरना होने लगती है और बाह्य विद्याओं से चित को फेरकर तब वह उसकी खोज में निकलता है और उसको गुरू से पाकर तृप्त और कृत-कृत्य हो जाता है। यह बिना गुरू की सहायता के प्राप्त नहीं होती।"

सर्वाजित ने कहा—"मैंने तो इसको अब तक नहीं सुना।'

कबीर साहब ने उत्तर दिया "अब तक तो तुम बाह्य विद्याओं से उकताये भी तो नहीं थे इसको जानते भी तो कैसे जानते तुम तो मुझसे लड़ने चले थे। उसी लड़ाई के सिलसिले में अब मेरा सत्संग प्राप्त हुआ। धीरे-धीरे संकेतों द्वारा तुम को इस ओर आकर्षित कर रहा हूं।"

सर्वाजित ने पूछा "क्या यह विद्या वेद में नहीं है ?"

कबीर साहब बोले "जब मैंने तुमको यह बता दिया है कि यह केवल गुरू की दया से प्राप्त होती है तो तुमको समझ लेना चाहिए कि इसको वेदों द्वारा प्राप्त नहीं कर सकते। प्रत्येक वस्तु के प्राप्त करने का मुख्य साधन होता हैं। स्वसम्वेद की प्राप्ति का साधन केवल गुरू का रूप, गुरू का सहारा, गुरू की सहायता और गुरू की दयालुता है यह में कहता हूँ इसके अतिरिक्त जिव्हा खोलने को जी नहीं चाहता।"

सर्वाजित की व्याकुलता बढ़ गयी। उसने प्रश्न किया—"भगवन् ! इस स्वसम्वेद का कोई और भी नाम है ?"

कबीर साहब बोले—"हाँ, इसका और नाम भी है। नाम का गढ़ना तो मनुष्य की जिव्हा और हृदय का काम है। इस स्वसम्वेद को परा विद्या कहते हैं। इसके अतिरिक्त शेष अन्य विद्यायें अपरा विद्या कहलाती हैं वार पद की समस्त विद्यायें

अपरा हैं और पार की विद्या परा कहलाती है। इन शब्दों से तुम्हारे कान अपरिचित न होंगे ?"

सर्वाजित का मुख-मण्डल गुलाब के फूल के समान खिल गया। ललाट चमक उठा। उसने कहा "हाँ, भगवन्! परा और अपरा विद्या का नाम हमारे शास्त्रों में आया है किन्तु मैंने अब तक इस प्रकार उसकी परिभाषा नहीं सुनी थी।"

कबीर साहब ने पूछा —"तुमने जो सुना है सत्संग में उस का वर्णन करो जिससे यह सत्संगी भी सुन लें।"

सर्वाजित बैलों पर ग्रन्थों को लाद कर लाया था। वह जहाँ शास्त्रार्थ करने जाता था इसी भाँति बड़े रौब दौब के साथ जाता था। यहाँ भी वह अपनी पोथी पत्रा साथ लाया था। उसने उसी समय छान्दोग्य उपनिषद से नारद और सेत कुमार की कथा पढ़ कर सुनाई और मुण्डक उपनिषद के उस प्रमाण को दिखाया जिसका अनुवाद यह है कि ऋगवेद आदि सब के सब अपरा विद्या हैं और परा विद्या वह है जिसके द्वारा अक्षर ब्रह्म का ज्ञान होता है।

## वेद का अंग

कबीर साहब ने यह सुनकर कहा "इस वाणी में जिस परा विद्या का संकेत है वही स्वसम्वेद है और मैं उसी को प्रकट करने आया हूं।"

सर्वाजित समझने को तो समझ गया कि कबीर साहब महा अनुभवी स्वयंसिद्ध और परम ज्ञानी पुरुष हैं परन्तु चित्त में अभी तक इस प्रकार के संशय और भ्रम शेष थे जो संस्कृत जानने वाले पंडितो की प्रकृति से सम्बन्ध रखते हैं। यह उन लोगों को अपढ़ समझते हैं जिनको संस्कृत नहीं आती, यद्यपि आन्तरिक विद्या, आत्म विद्या तथा परा विद्या का संस्कृत से

कोई ऐसा विशेष सम्बन्ध नहीं है। यह सीधे गुरू की संगत और गुरू की सेवा से प्राप्त होती है। अब जाकर उसको विश्वास हो गया कि कबीर साहब का मत सबसे ऊँचा है।

सर्वाजित बोला भगवन्! स्वसम्वेद के विषय में मुझको निश्चय हो गया किन्तु यह शंका रह गई है उसका भी समाधान कर दीजिये।"

कबीर साहब ने पूछा – "वह क्या है ?"

सर्वाजित ने उत्तर दिया—"वह यह है कि साधारण हिन्दू जनता वेदों को ईश्वर कृत और ईश्वरीय वाणी बताती है। क्या आप भी इसको इसी प्रकार मानते हो ?

कबीर साहब ने प्रश्न किया – "यदि मैं कहूं कि वेद ईश्वर कृत हैं या ईश्वरकृत नहीं हैं तो तुमको क्या हानि या लाभ पहुंचेगा ?'

सर्वाजित ने उत्तर दिया– "मुझमें जो अभी तक वेदों की टेक है वह चली जायगी।"

कबीर साहब ने कहा "वेद ईश्वर कृत अवश्य हैं परन्तु लोग ईश्वर शब्द का अर्थ नहीं समझते इसलिये धोखा खाते हैं और जीवन पर्यन्त धोके में पड़े रहते हैं यदि साधारण जनता ऐसा समझती रहे तो कुछ हानि नहीं है। वह टेकी होते हैं। टेक उनके जीवन का आधार है। टेक के दूर हो जाने से वह और भी भ्रम में पड़ जाते हैं परन्तु समझदार के लिये टेकी बनने की किंचित आवश्यकता नहीं है इसमें उनकी हानि है। मैंने तुमसे अनेकों बार कहा है कि पक्षपात और हठधर्मी आत्मिक कोढ़ है और जब तक मनुष्य इस रोग में ग्रसित रहता रहेगा तब तक उसकी रोगी बुद्धि को सुख और स्वास्थ्य न मिलेगा। इस कारण तुमको व्यर्थ की टेक के बन्धन से मुक्त होना चाहिए वरन् न तम आत्मिक उन्नति कर सकोगे न सार

शब्द के अधिकारी बन सकोगे। मैं मानता हूं कि वेद ईश्वर कृत है परन्तु जिस ईश्वर के विचार से यह बातें कही जाती हैं उसमें और साधारण जनता के विश्वास में अन्तर है। ईश्वर के वास्तविक अर्थ यह है कि जिसमें 'एश्वर्य' अर्थात् योग्यता, शक्ति और बुद्धि हो। जितने मनुष्य इस विशेषण से युक्त हों या हो सकते हों वह सब के सब ईश्वर कहे जा सकते हैं और कोई मनुष्य उसके अधिकार को नहीं छीन सकता। जिन रिषियों में वेदों को बनाया था वह ईश्वर रूप थे और इस कारण वेद ईश्वर कृत हैं। रिषियों के अतिरिक्त अन्य कोई ईश्वर हाथ में लेखनी और दबात लेकर वेदों को लिखने नहीं बैठा था। तुमको स्वयं इस वाणी की साक्षी और पुष्टि की सामग्री इन्ही वेदों द्वारा ही प्राप्त होगी यदि तुम पक्षपात व हठधर्मी को छोड़कर उस पर विचार करो। क्या तुमको वेद स्वयं नहीं बताते कि उनकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई ?

सर्वाजित ने आश्चर्य में होकर स्वीकार किया "प्रभो ! शत् पथ ब्राह्मण के ग्याहरवें काण्ड के पाँचवे अध्याय में इस प्रकार आया है कि ३ तप करने वाले तपस्वियों से वेद प्रकट हुए। अग्नि से ऋग, वायु से यजु और सूर्य से साम ?"

कबीर साहब बोले—"फिर तुमको किसी और की साक्षी के खोज करने की आवश्यकता नहीं। जब वेद स्वयं अपनी उत्पत्ति का इतिहास बताते हैं तो फिर दूसरे अन्य की साक्षी एकत्र करने का प्रयत्न व्यर्थ हुआ या नहीं ? संसार अनोखी बातों का उपासक है। साधारण बात को वह घृणा के कान से सुनता है। हाँ, यदि कोई विचित्र घटना हो तो उसको आश्चर्य की दृष्टि से देखकर उसकी महिमा को मानता है। यदि इन मनुष्यों को कहा जाय कि वेद मनुष्यकृत हैं तो उनके हृदय में क्लेश होगा किन्तु इनके हृदय में मनुष्यों का और मनुष्य जाति

का किंचित् सन्मान नहीं है परन्तु यदि इस भाँति कहा जाय कि ईश्वर ने वेद बनाकर भेजे हैं तब उसके महत्व को स्वीकार करेंगे। समझ-बूझ चाहे कुछ न हो परन्तु बात विचित्र और विलक्षण अवश्य हो। मैं ऐसी बातों से पृथक रहता हूँ। केवल साधारण और सरल भाषा में जीवों को चिताता हूँ। पण्डित मेरी ओर कम ध्यान देते हैं और मुझे भी उनकी परवाह नहीं है। मेरा काम तो हंसों के चिताने का है जो दूध और पानी के परखने की योग्यता रखते हैं।

यह केवल हिन्दुओ का ही नहीं किन्तु सबकी यही दशा है. सब सिद्ध, शक्ति तथा अन्याय चमत्कार के प्रेमी होते हैं जिस ने तनिक चित्त को एकाग्र कर लिया उसमें सिद्धि शक्ति आ गयी और बस ! परन्तु यह असली स्थान नहीं है। आदर्श तो केवल निजस्वरूप और सार तत्व का ज्ञान है।"

जिन ऋषियों ने वेद बनाये थे वह साधारण मनुष्य नहीं थे। ईश्वर कोटि में रहने के कारण वह ईश्वर का रूप ही थे। जो ईश्वर को जानता है वह ईश्वर ही है जो ब्रह्मा को पहचानता है वह ब्रह्म ही है। इस दृष्टि से वेद ईश्वर कृत मान लिये गये हैं और मानने के योग्य हैं। इससे वेदों के महत्व में किंचित भी अन्तर नहीं पड़ता किन्तु बहुत बड़ा लाभ यह होता है कि पक्षपात और हठधर्मी की जड़ सदैव के लिये कट जाती है और मनुष्य समझदार हो जाता है।'

"तुम एकाध मन्त्र तो सुनाओ। उससे और भी इस बात का पता चलेगा।'

सर्वाजित ने यजुर्वेद के ३२ वें अध्याय के १५वें मन्त्र को पढ़ा। 'मेधामयः वरुणः दोष्त्यः' इसका अनुवाद यह है-ए वरुण देवता तू मुझे बुद्धि दे।

कबीर साहब ने इसको सुनकर कहा—"यह विनय कौन

करता है ? ईश्वर या मनुष्य ? ईश्वर क्यों किसी से बुद्धि का प्रश्न करने लगा । मानव ही ऐसी विनय करता है । यदि यह कहो कि ईश्वर ने मानव के शिक्षा देने के लिये ऐसे मन्त्र बनाये कि इसी प्रकार वह प्रार्थनाऐं किया करें, तो भाई ! यह तो एकदम अबोध बालकों जैसी बातें हैं बालक इन पर लडा मड़ा करें । समझदार और श्रेष्ट मानव तत्व को जान-बूझ कर बालकों को उनके खेल-कूद में छोड़ देता है और उन को छेड़ना व्यर्थ और निरर्थक समझता है—ऋग, यजु, साम सबकी प्रार्थनाऐं इसी प्रकार की हैं ।'

फिर तुम देखो कौन वेद ब्राह्मण या उपनिषद है । जो ऐतिहासिक घटनाओं और किस्सा कहानी से खाली हों उनमें स्वयं रिषियों के नाम और उनके जीवन चरित्र के उल्लेखहोते हैं । क्या इससे सिद्ध नहीं है कि वह मनुष्य से बनाये हुये हैं । उपनिषद तो अब भी बनते चले आ रहे हैं । जिसमें तनिक भी संस्कृत का ज्ञान हुआ वह एक ग्रन्थ बनाकर उसमें मिला देता है । इसी भांति पूर्व से भी होता चला आ रहा है हिन्दुओं के अतिरिक्त और भी ऐसा करते चले आये हैं । हिन्दू धर्म सबसे अधिक प्राचीन होने के कारण उनके ग्रन्थ संसार में अधिक प्रकाश डालने वाले हैं । इनकी देखा-देखी दूसरों को भी इसी प्रकार प्रणाली चलाने की सूझी और संसार में एक के बाद दूसरे सम्प्रदाओं का सिलसिला चल निकला ।

सर्वाजित बोला—"उपनिषद और ब्राह्मण में तो भला किस्से कहानी सम्मिलित हैं इसको अस्वीकार नहीं किया जा सकता परन्तु वेदों का संहिता भाग इस त्रुटि से रहित है ।

कबीर साहब ने पूछा—,'क्या वेदों के मन्त्रों में सचमुच रिषियों के नाम नहीं आये हैं ?

सर्वाजित ने उत्तर दिया - "नाम तो आते हैं किन्तुभावार्थ

के विचार से वह कुछ और भी सिद्ध किये जा सकते हैं।'

कबीर सहाब ने कहा—"सर्वाजित ! तुम समझ गये कि सार तत्व क्या है और फिर निष्प्रयोजन अड़ते हो। तुम्हारा अभिमान एकदम युक्ति रहित हो जाता है। इन वेदों के संबन्ध में कोई मनुष्यसम्मति नहीं दे सकता कि यह कितनेप्राचीन हैं। त्रेता से लेकर द्वापर के अन्तिम काल तक वेदों के मन्त्र गढ़ते हुए चले आ रहे हैं। व्यास ने कलियुग के आदि काल में इनको चार ग्रंथों के रूप में सम्पादित किया और इस युक्ति से उनमें और अधिक वृद्धि कर दी यदि यह न किया जाता तो उपनिषदों की भाँति उनकी भी दशा होती। वेदों को संयुक्त रीति से संग्रह करने का काम व्यास जी ने ही किया है। यह तुम जानते हो और जान गये हो। मतमतान्तरों का सिलसिला ऐसा ही चला करता है पहले वेद मन्त्र थे फिर ब्राह्मण ग्रंथ बने फिर उपनिषद लिखे गये और अन्तिम काल में यह तीनों अर्थात् फिर संहिता भाग, ब्राह्मण भाग और उपनिषद् भाग त्रिवेद अर्थात् ३ वेद कहलाये। इनमें उपनिषद् बनाने वाले सबसे अधिक चतुर थे और उनके उच्च विचार स्वीकार किये जाने का अधिकार रखते हैं।'

सर्वाजित ने पूछा—"वेदों को जो श्रुति कहा जाता है वह संभवतः इसी कारण होगा। जो लोग एक दूसरे से सुनते चले आये, उनको सुरक्षित रक्खा।

कबीर साहब बोले—"यह भी हो सकता है। पहले संसार में पढ़ने लिखने का रिवाज नहीं था। पढ़ना-लिखना द्वापर के अन्तिम काल का आविष्कार है। इस कारण एक मनुष्य दूसरे की वाणी वचन को सुनकर कंठाग्र कर लिया करता था परन्तु इस श्रुति शब्द का अर्थ कुछ और भी है। श्रुति का अर्थ है सुना गया। इससे स्पष्ट प्रकट है कि ध्यान के समय रिषियों

की है तो फिर कहाजायेगा कि जिसमें उत्पत्ति की है वहजगत पहले ही से विद्यमान था और यदि ईश्वर के सिवा प्रकृति भी कोई वस्तु है तो फिर ईश्वर को यजुर्वेद परमित और सर्वव्यापक क्यों कह रहा है, क्योंकि जब एक से दो हो गये तो उनमें से कोई सर्वव्यापक न रहा। उसका वह अभिमान बिल्कुल असत्य हो गया। एक स्थान पर वह इश्वर को सर्व-व्यापक बताता है दूसरे स्थान पर वह उसका खण्डन कर देता है। तीसरा प्रश्न स्वयं तुम्हारा है, जो तुमने मुझसे किया था कि ईश्वर ने किस स्वार्थ से उत्पत्ति की है यदि उसमें स्वार्थ है तो फिर वह निकृष्ट हुआ। यह ऐसे प्रश्न हैं कि जिनका उत्तर देना सुगम नहीं है। इसलिये तुम्हारा यह विचार कि इश्वर इस जगत् से कोइ पृथक वस्तु है एकदम असत्य तथा बेअर्थ है यह विषय अत्यन्त विचाराधीन है।

इसके सिवा तुम देखते हो कि जहाँ ईश्वर का शब्द आया है वहाँ शास्त्र कहीं-कहीं परमेश्वर का शब्द भी प्रयोग करते है फिर तो इश्वर और परमेश्वर में भी कोई भेद होना चाहिए। या यों ही यह शब्द गढ़े गये हैं। फिर इश्वर के अतिरिक्त ब्रह्म और परब्रह्म, सबल ब्रह्म और शुद्ध ब्रह्म इत्यादि शब्द भी यत्र-तत्र भिन्न-२ अर्थ और आशय के लिये प्रयोग किये गये हैं। यदि यह कहो कि यह सब एक समान और एक ही अर्थ देते हैं तो बिल्कुल अशुद्ध होगा, क्योंकि ब्रह्म के अर्थ हैं फैला हुआ सर्व व्यापक और परब्रह्म के अर्थ है जो इस फैलाव से परे हो। फिर अन्तर हुआ या नहीं ? इसी प्रकार शब्द ब्रह्म और शुद्ध ब्रह्म का हाल है। यह शब्द स्पष्ट बता रहे हैं कि शब्द ब्रह्मशुद्ध ब्रह्म से भिन्न होगा। फिर इसके सिवा ईश्वर का अर्थ है शक्ति वाला। और परमेश्वर का अर्थ है महान शक्ति वाला ! भला इनमें कोई अन्तर होगा तब तो यह शब्दे गढ़े

साखी-राम हि राम पुकारते, जिभ्या परि गये रोस ।
सुधा जब पीवे नहीं, खोद पीवन की हवस ।।

व्याख्या – वेद निजरूप के साथ (स्वतः प्रमाण)और स्मृति दूसरों के साथ (प्रतः) प्रमाणित कही जाती है । स्मृति वेद के आधार पर मनुष्य ने रची । यह बन्धन रूप होकर आयी और कर्म काण्ड का व्यर्थ का भ्रम जाल फैला दिया । कैसे अंधेर की बात है मनुष्य ने स्वयं यह रस्सी बटी और स्वयं ही उसने अपने गले में फाँसी लगायी । समस्त ससार विषय के बन्धन में फंसा है । गाँठ पर गाँठ लगती जा रही है । छूटने का कोई उपाय नहीं देख पड़ता । देखते-देखते इस स्मृति के प्रताप से यमराज ने जगत को लूट लिया ।

ऐ सर्वाजित ! मैं तुम को कहाँ तक कहूं । एक भी तो असली बात को सुनने वाला और जानने वाला देख नहीं पड़ता । सुनो –

(रमैक्ति)अंध सो दर्पण वेद पुराना,दरवी कहा महारस जाना
जस खर चंदन लादे भारा । परिमलत्रास न जान गंवारा ।।
कहै कबीर खोजै असमाना, सो न मिला जो जाय अभिमाना

अनुवाद (१) वेद पुराण अन्धों के दर्पण हैं । करछली या चमचा को स्वादिष्ट भोजन का क्या ज्ञान है ! (२) गदहे की पीठ पर चन्दन लदा हुआ है परन्तु वह गँवार क्याजानता है कि मल्यागिर चन्दन की सुगन्धि कैसी होती है ? (३)कबीर साहब कहते हैं-ग्रन्थों के बोझ से लोग लदे हैं परन्तु असली ज्ञान का पता तक नहीं है । यह वेद पढ़ने वाले वेद पढ़कर मालिक की खोज स्वर्ग और आकाश में करातें हैं । इनको तो इतना भी ज्ञान नहीं होता कि इनका अभिमान मिट जाता । काम,क्रोध, अहंकार के मारे हुए असलियत को क्या समझेंगे ?

तुम मेरे सत्संग में आये हो, मन में विचार करो, अब धोखे में न पड़ो। सुनो—

रमैणि-स्मृति आहि गुननको चीन्हा। पाप पुण्य को मारग लीन्हा।
स्मृति वेद पढ़े अस रारा। पाखण्ड रूप करे अहंकारा॥
पढ़े वेद और करे बड़ाई। संशय गाँठी अजहु न जाई।
पढ़ि कै शास्त्र जिव बध करई। मूड़ि काटि अगमन के धरई॥
कहै कबीर पाखण्ड ते, बहु तक जीव सताय।
अनुभव भाव न दर्शई, जियत न आपु लखाय॥

व्याख्या—धर्म शास्त्रों ने गुणों का निर्णय करके पाप-पुण्य का मार्ग चलाया वेद और स्मृति दोनों ने व्यर्थ का झगड़ा उत्पन्न कर दिया इनको पढ़कर पाखण्ड रूप में अहंकार और अभिमान उत्पन्न हो गया। वेद पढ़कर सिवाय अपनी बड़ाई करने के और कुछ नहीं सूझता। भ्रम व शंकायें जैसी की तैसी बनी रहती हैं। जीवन पर्यन्त वेद पढ़े और कोरे के कोरे रहे। यह देखो पढ़ते हैं शास्त्र और बलिदान करते है जीव को। इन बेचारों का सिर काटकर पत्थरों की मूर्तियों के आगे रखते हैं इनको जड़ और चैतन्य के भेद का भी कुछ ज्ञान नहीं हुआ। कबीर साहब कहते हैं कि इसी पाखण्ड से कितने जीव सताये जा रहे हैं। लोग अनुभव भाव को नहीं देखते, न अपने आपको पहचानते है। सब पाखण्ड ही पाखण्ड हो रहा हैं।

## ईश्वर विचार का अंग

सर्वाजित बोला—"आपने ऋषियों को ईश्वर का नाम दिया है। शब्दार्थ की दृष्टि से तो यह ठीक है कि जिसमें एश्वर्य अर्थात् (शक्ति, शासन, अधिकार तथा योग्यता) हो, उसकोईश्वर कह सकते हैं परन्तु धार्मिक दृष्टि से इनकोईश्वर

त्कार और अनुभव सम्पन्न नहीं कहा जाता कहना और वस्तु है मानना और वस्तु है आर मानकर उसके जैसा हो जाना और वस्तु है।

सर्वाजित बोला –"मानना कल्पना मात्र है और मानकर उस जैसा हो जाना भी कल्पना ही कहा जायेगा। यह तो ऐसी व्यवस्था हुयी कि किसी वस्तु को किसी रंग में रंग दिया। ऐसी रंगत अस्थायी होगी और उसका विश्वास नहीं हैं आप की संगत और समीपता ने मुझको यह अवस्था प्रदान कर दी है कि मैं कहने और मानने को कल्पना (भाव) समझा रहा हूँ तथ्य तो जैसा है वैसा है उसमें कहने और मानने का विचार भो कल्पना मात्र है।

कबीर साहब ने कहा "जिस दृष्टि से प्रभावित होकर तुम इस प्रकार कह रहे हो वह मेरी ही दृष्टि का परिणाम है परन्तु जब यह प्रभाव तुम्हारा हो जाय तब वह विश्वास के योग्य होगा।

सर्वाजित बोला "मेरा तुम्हारा ये भी कल्पना मात्र है। यह द्वैतवाद है अद्वैतवाद नहीं है। इस समय मेरी दृष्टि सार तत्व पर है और मैं जो कुछ कह रहा हूं वह सच ही सच है। उसमें तनिक भी शंका, सन्देह की सम्भावना नहीं हैं।

कबीर साहब ने कहा "सोचो, यहाँ तुम्हारी वाणी में दृष्टि, दृश्य और द्रष्टा की त्रिपुटी विद्यमान है। कहना, कहने का तात्पर्य और कहने का मन्त्र तो है। यही त्रिपुटीवाद है। तुम इन दर्जों से ऊंचे नहीं चढ़े हो। कहने और मानने में तो उत्पत्ति की जड़ है। इस कहने और मानने की जड़ में अभी कुल्हाड़ी लगाना हैं।

सर्वाजित को मस्ती और समाधि की अवस्था हो गयी वह मस्त हाथी के समान बेसुध हो गया था। मस्ती में अपने आप

ने जो अनाहत् वाणी अपने घट में सुनी वह तो असली श्रुति थी। और फिर उसी अन्तर की धुनात्मक वाणी को अपनी प्रचलित भाषा के बन्धन में लाकर उसको वर्णात्मक बनादिया और मन्त्रों के रूप में परिवर्तित किया। धुन और होती है और उसके शब्दों के संग्रह का रूप और होता है। धुन क्या है उसको उसके असली रूप में दिखाना असम्भव है। हाँ, शब्दों के रूप में उसकी एक विशेष आकृति दिखा देना सम्भव है। जैसे सितार के गति की धुनि को तो कोई नहीं बता सकता। हाँ, दिड़-दा, दिड़-दा करते हुये उसका एक रूप बना दिया जाता है। ऋषियों ने अपने घट में जो धुनात्मक देव वाणी या अनाहत वाणी सुनी उसे अच्छे और सुरीले उच्च विचार के अर्थ वाले शब्दों से सुसज्जित कर मन्त्रों के रूप में गढ़ कर रख दिया। असलियत से तो उसी समय दूरी ही हो गयी, जब वह बन्धन में आयी और वह बन्धन वाले शब्द दिन प्रतिदिन गले का हार बनते गये अब यह दशा है कि पण्डित रात-दिन जूझते लड़ते, मरते और खपते रहते हैं और व्यर्थ में दुःखी रहते हैं। मैं अब संसार में असली श्रुति के सुनाने और पता देने के लिये आया हूं। यदि श्रुति सुनने का विचार है तो मुझसे युक्ति पूछो और उसके सिवा में और भी कुछ तुमको सुनाऊँ और समझाऊँगा।

अब लोग पाखंड में पड़ गये हैं श्रुति की तो यह दशा हुई उसके पीछे स्मृति आई वह भी पाखंड रूप बन गई। सुनो—

(रमैणि) वेद की पुत्री स्मृति भाई। सो जेवर कर लेते आई।
आपुहि बरी आपु गर बंधा। झूठ मोह काल का धन्धा॥
बंधवत बंध छोरि न आई। विषय स्वरूप भूलि दुनियाई॥
हमरे देखत सकल जग लूटा। दास कबीर राम कहि छूटा।

गये वरना उनकी आवश्यकता ही क्या थी ?"

सर्वाजित ने पहले इन शब्दों के गूढ़ार्थ पर विचार नहीं किया था। अब वह उसके सोचने को लाचार हुआ।

उसने विचार के पश्चात उत्तर दिया कि—"जो इश्वर माया की सहायता से रचना करता है वह उससे न्यारा है। और जो माया की सीमा से बाहर है।"

कबीर साहब बोले—"तब तो दो ईश्वर हो गये और इनमें से कोई व्यापक न रहा।"

सर्वाजित ने कहा—"परन्तु क्या जिस प्रकार आप पहिले कह चुके हैं कि अल्प दृष्टि के हटा देने और ऐकत्ववाद की दृष्टि ग्रहण कर लेने से एक ही अकेली वस्तु के ध्यान को दृढ़ नहीं किया जा सकता।'

कबीर साहब ने उत्तर दिया—"यह तो तुम कह रहे हो ठीक है परन्तु जव शब्दों पर अटक रहे हो तो उनकी व्याख्या क्यों न भली भाँति कर दी जाय जिससे फिर भ्रम का खटका न रहे।'

सर्वाजित बोला—"हाँ, निःसन्देह यह उचित है और मैं इस प्रकार उदाहरण की सहायता से समझने का प्रयत्न करता हूं। तालाब में जो पानी है वह तालाब का पानी कहलाता है और समुद्र का पानी समुद्री पानी का नाम पाता है. इनमें एक इश्वर हुआ और दूसरा परमेश्वर हुआ और चूंकि पानी पानी में भेद नहीं है इसलिये ईश्वर और परमेश्वर में भी भेद नहीं है। सृष्टि पानी से होती है। जितने जीव जन्तु, पृथ्वी, कंकर, पत्थर है पानी ही के बदले हुए रूप है। अतएवतालाव और समुद्र के पानी को उसके परिवर्तित रूप की सृष्टि की उपेक्षित दृष्टि से हम माया सबल ब्रह्म कहेंगे शेष जब समस्त उपेक्षित दृष्टि की कल्पना को हृदय से निकाल देते हैं तो वह

परिमित पानी शुद्ध ब्रह्म कहलाया जा सकता है यह इन शब्दों का अन्तर है जब तक दृष्टि अल्पज्ञ है तब तक माया व ब्रह्म दोनों का विचार है और जब दृष्टि में सर्वज्ञता और एकत्वता समा गयी तो फिर माया के विचार दूर हो जाने से केवल एक ही शुद्ध ब्रह्म का विचार शेष रह जाता हैं। यही अद्वैतवाद और एकत्ववाद है। मैं इसको इसी प्रकार समझता हूं।"

कबीर साहब सर्वाजित की इस ब्रह्मवादी प्रकरण की युक्ति को सुनकर प्रसन्न हो गये, कहा – यह सत्य है। वेदान्त में इसी प्रकार समझाने का प्रयत्न किया गया है परन्तु इस समझ में ईश्वर का गुणात्मक ध्यान नहीं रहा। ईश्वर का बिल्कुल अभाव हो गया।

सर्वाजित बोला – "यदि वह भाव चला गया तो उसमें हानि क्या हुयी ?

कबीर साहब ने कहा – "फिर तो तुम ईश्वरवादी नहीं रहे।

सर्वाजित ने उत्तर दिया – 'ईश्वरवादी न रहने से हानि ही क्या हुई ? तथ्य का समझना ही तो मन्तव्य था।

कबीर साहब ने प्रसन्न होकर कहा "सर्वाजित ! अब तुम कुछ-कुछ राह पर आ गये हो किन्तु ऐसी शीघ्रता न करो कि तुम्हारे पाँव फिसल जायें और तुम मुँह के बल गिर पड़ो कुछ दिनों ईश्वरवादी बने रहने में हानि नहीं है परन्तु हाँ, शीघ्रता करने में हानि होती है और जो दर्जे अभी पार करने हैं वह बाकी रह जाते हैं और उनका बाकी रहना हानिकारक सिद्ध होता है यह समझ-बूझ की बिचली अवस्था है यह वाचक ज्ञान कहलाता है। यह ज्ञान हृदय का गुण है। वाचक ज्ञान मन की ऊंची वृत्ति अवश्य है परन्तु अभी तक उसको सत या अनुभव की समीपता नहीं प्राप्त हुयी है, इसलिये वह साक्षा-

नहीं कह सकते। ईश्वर कोई और ही है।'

कबीर साहब ने पूछा—"वह भी मुझे सुना दो। मैं भी सुन लूं कि तुम क्या कहते हो। फिर तुम्हें समझाने का प्रयत्न करूं।"

सर्वाजित ने उत्तर दिया—"यजुर्वेद अध्याय ४० के आठवें मन्त्र में आया है कि-स्परयागा, क्षू, कर्म्य, कायः, इसका अर्थ यह है कि ईश्वर सर्वव्यापी, शुद्ध और अकाया (बिना शरीर का) है।"

कबीर साहब बोले—"यह सच है परन्तु तुम तनिक वेद के उस मन्त्र को पढ़ कर सुनाओ जिससे ईश्वर की उत्पत्ति का सिलसिला चला करता है तो मैं तुम्हारी दृष्टि के ऊंचे बनाने का प्रबन्ध करूं।"

सर्वाजित ने कहा—"यजुर्वेद के ३१वें अध्याय में आता है तत्व, विराट, जायत, विराजु, आध्यपुरुष, सजातु, अत्तरि चेत पश्चात भूमि मथो पुरः। अर्थात् उसी ईश्वर से विराट हुआ, विराट से आदि पुरुष प्रकट हुआ। यह आदि पुरुषजन्म लेते ही ज्ञान और बुद्धि के प्रताप से श्रेष्ठ अर्थात बड़ा माना गया। फिर ईश्वर ने पृथ्वी को रचा, फिर शरीर को।"

फिर अथर्ववेद काण्ड ११, परिपाठ २४ अनुवाक् २ मन्त्र २७ में इस प्रकार आया है कि 'देवा, पित्रः मनुष्यः गन्धर्वा परस्रासश्चय' अर्थात उसी से देवता, पित्र, मनुष्य, गन्धर्व, अप्सरा इत्यादि सबकी उत्पत्ति हुई।'

कबीर साहब बोले—"बहुत ठीक है। अब सुनो! यदि ईश्वर से यह उत्पत्ति होती है तो फिर उसमें कई शंकाएं उत्पन्न होती हैं पहली आपत्ति यह है कि ईश्वर ने किसमें, किस से और किस प्रकार उत्पत्ति की। यदि कहो संसार में अपनी बुद्धि से और प्रकृति अर्थात माद्दा के द्वारा उसने उत्पत्ति

को संभाल नहीं सकता था।

इसने कहा—"भगवन्! कहना जिव्हा का गुण है मानना मन का काम है। मैं न जिव्हा हूँ, न मन हूँ, किन्तु मन और वाणी से इस समय बहुत ऊंचा चढ़ गया हूं।

कबीर साहेब बोले—यह सत्य है परन्तु एक प्रश्न का उत्तर दो। क्या तुम वाणी नहीं हो और क्या तुम मन नहीं हो? यदि तुम मन और वाणी से अपने आपको प्रथक जानते हो तो अभी तक विपत्ति की दशा से मुक्त नहीं हो। यह अस्थायी उत्साह और उमंग की अवस्था चिरस्थायी नहीं होगी। यह स्वयं द्वैतवाद से खाली कब है संभल करो वरन् या तो पागल हो जाओगे या वाचक ज्ञानी बने रहोगे।'

सर्वाजित ने विचार किया, आँखें खून की भांति लाल हो गयीं और उसकी विशेष उन्मत अवस्था हो गयी। वह फिर जिव्हा को न खोल सका और न फिर कुछ बोल सका।

कबीर साहेब उसकी दशा देखते थे। उसके हार्दिक भावों को जानते थे क्योंकि उसके हृदय सागर में जो भावनाओं की लहरें प्रवाहित थीं वह उनके वायुमण्डल सत्संग के प्रभाव का परिणाम थीं। शिष्य जब गुरू की समीपता का पद प्राप्त कर लेता है तो गुरू का उसमें इसी प्रकार संस्कार आ जाता है यह साधारण बात है।

सर्वाजित चुप था और सभा के समस्त मनुष्य चकित हो गये थे। उस जन समुदाय में एकत्व का प्रकाश कुछ इस प्रकार चमकने लगा था कि सबकी आँखों को चकाचौंध होने लगी थी और कोइ नहीं कह सकता था कि इसका क्या परिणाम होगा। यह तो सबको ज्ञान हो गया था कि अब सर्वाजित के शरीर में कबीर साहब का प्रकाश प्रवेश कर गया है। कई मनुष्यों के मन में यह सन्देह उत्पन्न हुआ कि अब सर्वाजित

अबधूत हो जायेगा। अबधूत उन्मत्त दशा को कहते हैं। वह एक विशेष दशा में लीन हो रहा था। मस्ती का प्याला पीकर अपने आपे से बाहर हो चुका था। जिव्हा खुलती न थी मन अधिक सोचने से दूर भागता था वह न बोला न कबीर साहेब ने कुछ देर तक कुछ कहा।

परन्तु यह अवस्था स्थिर रहने वाली नहीं थी। अन्त में कबीर साहब ने उच्च स्वर से अद्वैत पद की यह साखियाँ सुनायीं–

सबे खिलौने खाँड के खाँड खिलौने माँहि।
तैसे सब जग ब्रह्म में, ब्रह्म जगेत के माँहि ॥१॥
खाँड खिलौने दो नहीं खाँड खिलौने एक।
तैसे सब जग देखिये, किया कबीर विवेक ॥२॥
खाँड खिलौने तुम कहो एक-एक नहि दोय।
नाम रूप देखे प्रथक, हाथी घोड़ा सोय ॥३॥
उपजे ऐके खाँड ते हाथी, घोड़ा ऊट।
खाँड विचारि पाइया नाम रूप सब झूठ ॥४॥
त्यों ही ऐके जीव ते, जीव ईश जग जान।
ब्रह्म चराचर व्यापिका, नाम रूप को हान ॥५॥
ज्यों ही ऐके महल में, प्रतिमा विविध प्रकार।
कहै कबीर त्यों ही बसे, ब्रह्म मध्य संसार ॥६॥
दारू मध्य ज्यों पूतरी, पुतरी मध्ये दार।
कहै कबीर त्यों ब्रह्म में, भासत जग व्यवहार ॥७॥
कबीर लोहा एक है, गढ़ने का है फेर।
लोहे से बख्तर बने, लोहे से समशेर ॥८॥
नीर मध्य ज्यों बुदबुदा, बुद बुद मध्ये नी।
त्यों जग मध्ये ब्रह्म है, ब्रह्म में जगत कबीर ॥९॥

चीर मध्य ज्यों तन्तु है, तन्तु मध्य ज्यों चीर ।
त्यों जग मध्ये ब्रह्म है, ब्रह्म मे जगत कबीर ।।१०।।
भूषन मध्ये कनक ज्यों, भूषन कनक मंझार ।
त्यों जग मध्ये ब्रह्म है, ब्रह्म में जगत असार ।।११।
दरिया मध्ये लहर है, लहर मध्य दरियाव ।
त्यों जग मध्ये ब्रह्म है ब्रह्म में जगत स्वभाव ।।१२।।
देह मध्य ज्यों अंग है, अंगे मध्य शरीर ।
त्यों जग मध्ये ब्रह्म है, ब्रह्म मे जगत कबीर ।।१३।।
पावक एक अनेक ज्यों, दीपक और मसाल ।
कहै कबीर यों जानिए, ब्रह्म मध्य जग जाल ।।१४।।

## आत्म अनुभव का अंग

सर्वांजित संभल गया। इसने कहा—"भगवन्! मैंने चिर-काल तक शास्त्र पढ़े परन्तु ऐसी समाधि और खुशी की मस्ती मुझको कभी प्राप्त नहीं हुयी। आपके दो दिन के सत्संग ने मन की दशा को विचित्र ढंग से बदल दिया। इसमें क्या भेद है?

कबीर साहब बोले –"सुनो सर्वांजित! इसमें एक रहस्य है। मनुष्य यदि समुद्र का पानी स्वयं पीये तो उसको वह खारा, अप्रिय और कुस्वादिष्ट प्रतीत होगा परन्तु यदि वही पानी भाप के रूप में जब बादल बनकर बरसता है तो पीने में रुचिकर होता है शास्त्र खारे पानी के समुद्र हैं बादल गुरू है। वह नमक के भाग को त्यागकर शुद्ध पानी के प्रमाणुओं कोसूर्य की उष्णता द्वारा आकाश पर उड़ा ले जाते हैं और वहाँ से फिर जब पानी के रूप में उसको वरसाते हैं तब स्वादिष्ठ और मीठा हो जाता है। वह न केवल प्यास बुझाने के योग्य होता है किन्तु निर्मलता, स्वच्छता, तृप्ति और शान्ति देता है। अब

तक तुमने स्वयं ही अपने प्रयत्न से शास्त्र पढ़े थे। उनसे कुछ लाभ नहीं हुआ किन्तु वे अहंकार रूपी खारे पानी का स्वाद देते रहे और तुम आपा पन्थी बने हुये थे। 'सद्गुरु (कबीर साहेब) समान दूसरा कौन है' की उपमा उपयुक्त होती थी। शास्त्रों का ज्ञान शुष्क फिलसिफा था। जिस भाँति दो कुत्ते शुष्क हड्डियों पर लड़ते-झगड़ते रहते हैं वैसे ही वाचक ज्ञानी भी शुष्क फिलसिफा विषयों पर रात-दिन शब्दों के झगड़े उठाते रहते हैं और शब्दों के गोरख धन्धे से मुक्ति नहीं पाते और न उनको आत्म अनुभव की गति प्राप्त होती है अब तुम मेरे पास आये मैंने तुम्हारे निर्बल अंगों को देखकर उसी से तुमको दबा दिया। तुम्हारा अभिमान यकदम जाता रहा। तुम में हार्दिक भावनाओं के रूप में मेरी श्रेष्ठता और महत्ता की श्रद्धा उत्पन्न हुयी तुमने दीनता ग्रहण की। जब तुम्हारा हृदय मेरी ओर आकर्षित हुआ, मेरे आन्तरिक विचारों का प्रभाव उसमें भरना प्रारम्भ हुआ और तुम मेरी वाणी और विचार के अनुकूल बन गये। मुझमें सचाई है वह सचायी तुम्हारा रूप बन गयी। तथ्य से खाली तो तुम पहले भी नहीं थे। सारी सामग्री तुम्हारे भीतर भरी पड़ी हुयी थी। भ्रम के पर्दे पड़े हुए थे मैंने क्रमशः अपने विचार तथा मानसिक शक्ति द्वारा उन पर्दों को हटा दिया और पर्दों के हटाने से तुमने स्वयं ही सार वस्तु का अपने घट में साक्षात्कार कर लिया। मैंने कब तुम से अद्वैतवाद की चर्चा स्पष्ट शब्दों में की थी। हाँ, मेरे प्रश्नों ने तुम्हारे घट में प्रवेश कर उत्तर देने की सूझ उत्पन्न की और यह अवस्था "जो इस समय उत्पन्न हो गयी है तुम्हारे ही भीतर से निकली है वे तुम में पहले ही से विद्यमान थी किन्तु वह जाग्रत अवस्था में नहीं थी। अब वे प्रकट रूप में आ गयी परन्तु अभी तक उसका विश्वास नहीं

होता क्योंकि मन एक समुद्र है, उसमें ऊँची-ऊँची लहरें उठती रहती हैं कभी वह ऊँचा जाता है कभी नींचा होता है कौन कह सकता है कि यह उच्च दशा जो तुमको इस समय प्राप्त हो रही है अधिक दिनों तक स्थिर रहेगी। यह तो मेरे विचारों के मण्डल का प्रभाव है जब तक मनुष्य नदी केकिनारे रहता है उसको शुद्धता, तराबट प्राप्त होती है परन्तु जहाँ नदी से दूरी हुई वह तरावट चली जाती है। इसलिये चूँकि तुमको विद्या, दृष्टि और वाणी रूप से आज अनुभव हो गया है अब ऐसा प्रयत्न करना है कि तरावट प्रदान करने वाली सरिता स्वयं तुम्हारे हृदय के भीतर सदैव लहलहाने लगे, जिस से फिर उष्णता का भय और संसार के तीन तापों के दुःख की गर्मी का संकट सदैव के लिये नष्ट हो जाय। इस प्रयत्न का प्रबन्ध अपने आप होगा। अभी मैं तुमको और वार्तालाप करने का अवसर देता हूँ।"

सर्वाजित सतगुरु की बातों से इतना प्रभावित हो गया था कि उसको इस मस्ती की अवस्था छोड़ने से हार्दिक इन्कार था कबीर साहब ने उसकी दशा देखी। अपनी मानसिक शक्ति की धार को उसी समय छीन लिया और वह फिर अपनी पूर्व-वत दशा में आ गया। यह क्या हुआ! वह मन में सोचने लगा यह बिलकुल साधारण सी बात है। मनुष्य किसी उत्तम वक्ता की बात सुनकर उसके प्रभाव से प्रसन्न हो जाता है, परन्तु जहाँ वह दृष्टि से दूर हो गया फिर वह प्रभाव नष्ट हो जाता है। यह भी मानसिक शक्ति है। सन्त इसी प्रकार अपने शिष्यों को कभी अपनी मानसिक शक्ति देकर उभार देते हैं और कभी उसको छीन लेते हैं जिससे शिष्य को अनुभव होता चले और वह अभ्यास की ओर लगकर क्रिया व अभ्यास द्वारा

वह सुख देने वाली अवस्था स्वयं अपने घट में उत्पन्न कर ले ।

दो बातें हैं वैराग्य और अभ्यास । जिस प्रकार व्यवहारिक सम्बन्ध में वैराग्य और अभ्यास से काम लिया जाता है उसी भाँति परमार्थ में भी इन दोनों से काम लेने की आवश्यकता है । वैराग्य नाम है सम्बन्ध त्याग का और अभ्यास नाम है सम्बन्ध के ग्रहण का । वैराग्य और अभ्यास इस दृष्टि से ग्रहण और त्याग कहे जाते हैं और इन्हीं दोनों के बीच में सार तत्व प्रकट होता है । यह फकीरों का मत है, यह सन्तों का मार्ग है इसी को मध्य मार्ग और सुष्मणा नाडी का पन्थ कहा जाता है । सन्त मत न दाँये चलता है न बांये, किन्तु दोनों के मध्य में रहता है । सम्बन्ध रहित होते हुये भी सम्बन्ध रखना और सम्बन्ध रखते हुये, सम्बन्ध रहित होना ! यह उसकी क्रिया व्यवहार है ।

जैसा कि पहले कहा गया है वैराग्य सत्संग से प्राप्त होता है वैराग्य ज्ञान है और वह ज्ञान की व्याख्या भी है । दृष्टि को सबकी ओर से हटाती रहती है और केवल एक इष्ट, वास्तविक तथ्य सार वस्तु तथा निज रूप की ओर ले जाती है और इसकी ओर बार-बार और सदैव रात दिन लगे रहना अभ्यास है और यह अभ्यास सुरत शब्द योग का मार्ग है, जिसकी शिक्षा सबसे पहले कबीर साहब ने दी ।

अब सर्वाजित को फिर अवकाश मिल गया वह बोला - "भगवन आप जो कहते है वह सच है । सब लोग सदैव से कहते आये हैं कि 'ज्ञान जैसा मत नहीं, और गुरू बिना गत नहीं ।' अब मैंने गुरू गम का पता पा लिया । यह तन-मन-धन सब आप पर अर्पण है । अब इन चरणों को छोड़कर मैं कहीं न जाऊँगा ।"

कबीर साहब ने कहा –"अपने तन-मन-धन को अपने पास ही रहने दो, मुझे उनकी आवश्यकता नहीं है। मेरा रंग ग्रहण करते चलो जिससे इनसे छुटकारा मिल जाय और यह दुःख-दायी प्रतीत न हो। यह अवस्था अपने रूप की समझ से तुम को प्राप्त होगी। और मैं तुमको समझाने के लिये हर समय तैयार हूं। मैंने चिताने के लिये ही यह रूप धारण किया है।

कबीर साहब ने फिर कृपा दृष्टि से उसको टकटकी बाँध कर देखा। उसका हृदय सार तत्व के अमृत जल से भरने लगा उसने भी बिना पलकों को झपकाऐ हुये उनको देखना प्रारम्भ किया। दोनो हृदय मिले और फिर मस्ती के प्याले को हृदय के होठो से पीकर मस्त हो गया और झूमने लगा।

सर्वाजित ने कहा—"जगत का कल्पित द्वन्द मिट गया। असत्य संसार का झगड़ा जाता रहा। यहाँ तो आत्मा के बिना कोई भी नहीं है। न कहीं जड़ है न चैतन्य है। आत्मा ही आत्मा है। आत्मा के सिवा कोई भी नहीं है धोखा ही धोखा था। धोखा मिट गया। गुरू की दया से भ्रम का पर्दा उठ गया खुशी की दशा है। आनन्द की अवस्था है।'

कबीर साहेब बोले –"सर्वाजित ! तनिक इसकी अवस्था का वर्णन तो इन सतसंगियों से करो कि तुमको क्या हुआ था।"

सर्वाजित ने बोलने का साहस किया परन्तु कुछ न कह सका और वह कहता भी क्या यह कहने की बात ही नहीं थी

तब कबीर साहब ने आत्मवाद के अंग की यह साखियाँ फिर सुनाईं:

आतम अनुभव ज्ञान कथ, जो कोई पूछे वृद।
गूंगे ने गुड़ खाइया, कहे कौन मुख स्वाद ।।१।।

ज्यों गूंगे के सैन को गूंगा ही पहिचान ।
त्यों ज्ञानी के सुक्ख को, ज्ञानी होय तो जान ।।२।।
नर नारी के सुक्ख को खसी न जाने जान ।
त्यों ज्ञानी के सुक्ख को अज्ञानी क्या जान ।।३।।
आतम अनुभव जब भया तब नहिं हर्ष विषाद ।
चित्र दीप सम हो रहा, तजकर वाद-विवाद । ४।।
लिखा लिखी की है नहीं, देखा देखी बात ।
दुल्हा-दुल्हिन मिल गये, फीकी पड़ी बरात ।।५।।
सुखपत माहीं सब गले, मन बुद्धि चित्त प्रकाश ।
क्षणिक माहि परले भया, को ठाकुर को दास ।। ६।।
अन्धे मिल हाथी हुआ, अपने-अपने ज्ञान ।
अपनी-अपनी सब कहे किस को दीजें दान ।।७।।
अन्धों का हाथी सही, हाथ टटोल-टटोल ।
आँखों से नहिं देखिया, ताते भिन-भिन बोल ।।८।।
दूजा होय सो बोलिए, दूजा झगड़ा सोय ।
दो अन्धों के नाच में कहो कौन किया मोह ।।९।।
ज्ञानी युक्ति सुनाइया को सुन करे विचार ।
सूरदास की स्त्री किस पर करे श्रृंगार । १०।।
ज्ञानी भूले ज्ञान कथ, निकट रहा निज रूप ।
बाहर खोजत बापुरे, भीतर वस्तु अनूप ।।११।।
नैन समाने नैन में, बैन समाने बैन ।
जीव समाने अजीव ने, भये ऐन के ऐन ।।१२।।

सर्वांजित पर तो सतगुरू ने पूरी-पूरी दृष्टि की। उसे मूर्छा आ गई। वह हाल से बेहाल हो गया। सतसंग में औरों की अवस्था भी किसी प्रकार बदल गई। यह सतसंग का फल था। उसके पश्चात उस दिन का सत्संग समाप्त हुआ और सब प्रसन्न होकर अपने-अपने घर गये। सतगुरू ने केवल एक

जीव को चिताना चाहा था। किन्तु ओरों में भी संस्कार बीज पड़ गया। उनके हृदय में कबीर साहब की श्रेष्ठता का प्रभाव पड़ा। और जिन्होंने चित्त में ठान लिया कि कबीर साहब सतगुरू हैं और इन्हीं का आश्रय लेने से अपना काम बनेगा, वह इस भाव को लेकर घर गये। सभा में श्रद्धा, विश्वास प्रकट करने का अवसर नहीं था। बाद में उनमें से बहुत से मनुष्य उनके शिष्य हुये, जिनके विवरण की यहाँ आवश्यकता नहीं है।

सर्वाजित मस्त होकर गया। उसको बेखुदी और खुदी की माध्यमिक अवस्था का नशा चढ़ा रहा। उसने भाँति-भाँति के स्वप्न देखे। नियम की बात है कि मनुष्य जिस भाव को लेकर चित में रखकर सोने जाता है उसी प्रकार के स्वप्न उसको देख पड़ते हैं।

## माया का भंग

दूसरे दिन फिर श्री रामानन्द जी के मठ में हजारों मनुष्य सर्वाजित का संवाद सुनने आये। सर्वाजित ने रात्र के स्वप्न की घटनायें वर्णन की। कबीर साहब बोले आदि माया कीन्ही चतुराई। झूठी बाजी साँच दिखाई ॥

सर्वाजित ने प्रश्न किया—"क्या मैंने जो घटनाये देखी हैं वह बिलकुल ही झूठी मिथ्या और असत्य है?"

कबीर साहब बोले "तुम यहाँ किसको झूठ कहोगे किस को सच! किसे मिथ्या समझोगे, किसे यथार्थ। किसको सत्य मानोगे और किसको असत्य। जो है उसको गहरी दृष्टि से देखते चलो। यह सब तुमको पढ़ाने के लिये हैं उनका केवल यही प्रयोजन है कि जब मनुष्य परमार्थ के मार्ग पर सच्चाई के साथ चलने लगता है भरमाने वाली माया भी उसकी सहायक हो जाती है और वह अपने ही घट में ऐसे तमाशे देखता है जो वास्तव में उसकी श्रद्धा के तथा विचार के रूप हैं और

इसी में गुरू भक्ति का भाव छिपा रहता है। इसी को परिचय बोलते हैं। तुम यहाँ से सत्संग का प्रभाव लेकर सोने गये और उस प्रभाव ने एक मुख्य रूप धारण करके तुमको आन्तरिक दृश्यों का अवलोकन करा दिया। इसी का नाम माया है।

सर्वाजित ने कहा "तो यह असत्य ही हुई।"

कबीर साहब ने पूछा—"यह क्यों है ?"

सर्वाजित बोला "इसलिये कि वह अब नहीं है। एक समय में थी दूसरे समय में उसका अभाव है और जो वस्तु हर समय न रहे वह असत्य हीं कहलाती है। सत उसका नाम है जो तीनों काल भूत, भविष्य और वर्तमान में रहे।

कबीर साहब ने कहा—तुम्हारी इस परिभाषा से फिर हमको यह परिणाम निकलना चाहिये कि जिस सूर्य को तुमने कल देखा था वह रात को दृष्टिगोचर नहीं पड़ा, इसलिये वह झूठा और असत्य हुआ। कल का दिन और कल की रात दोनों ही भूत हो गये। इस युक्ति से बेचारे सूर्य पर अच्छी विपत्ति आ गई, क्योंकि सर्वाजित ने अपनी दार्शनिक युक्ति उसको पूर्व काल का नाम देकर असत्य बना दिया। भविष्य और वर्तमान का तो कहना ही क्या है ? तुम कल दिन को यहाँ उपस्थित थे, रात्रि के समय नहीं थे, इसलिये असत्य और झूठे हुए। पता नहीं इस समय तुम कौन हो ! तुमको सर्वाजित कहूं अथवा क्या समझूं ?"

सर्वाजित थोड़ी देर के लिये चुप हो गया। फिर सोचकर बोला 'शास्त्रों ने असत्य की परिभाषा तो यही की है।'

कबीर साहब बोले "तो शास्त्रों की इस परिभाषा से इस आत्मा को भी असत्य हीं कहना चाहिए क्योंकि वह कभी देख पड़ता है कभी नहीं देख पड़ता, परन्तु शास्त्र वाले आत्मा को अनादि और अविनाशी भी कहते हैं। यह बड़े अंधेर की

बात है। तुम माया को असत्य कहते हो। यहाँ तुम्हारा सत माना हुआ आत्मा झूठा हो जाता है।

सर्वाजित को फिर संकोच हुआ—"आत्मा तो हर समय रहता है। कोई ऐसा समय नहीं है जब यह न रहा हो इसको असत्य किस प्रकार कहा जा सकता है।'

कबीर साहब ने कहा—"फिर माया भी हर समय रहती है। कोई ऐसा समय नहीं था जब यह न रही हो इसको असत्य कैसे कहोगे ? पहले ये तो सिद्ध करो कि माया किस समय नहीं रहती तब मैं तुम्हारी बात को ठीक मान लूं।'

सर्वाजित ने कहा—"माया के विषय में स्वामीशंकराचार्य का मत है कि वह है नहीं किन्तु भासती हैं। वह अनिर्वचनीय अर्थात् अकथनीय है।

कबीर साहब ने उत्तर दिया—"मैं स्वामी शंकराचार्य के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहना चाहता। हाँ, मैं तुम्हारे ही शब्दों में कह सकता हूँ कि आत्मा है नहीं मगर भासता है। वह भी अनिर्वचनीय है क्योंकि आज तक कोई ऐसा ऋषि-मुनि और ज्ञानी-ध्यानी नहीं हुआ है जिसने आत्मा के सम्बन्ध में ठीक मत स्थिर किया हो। सारे लोग सनातन से ही ऐसा कहते चले आये हैं कि आत्मा में मन, वाणी की गम नहीं है। जो मन और वाणी की पहुंच से ऊंचा हो वह अनिर्वचनीय और अकथनीय ही होता है। तुम अपनी बातों से आत्मा को ही माया सिद्ध कर रहे हो। मैं तुम्हारी माया को असत्य कहूं अथवा आत्मा को असत्य कहूं ?"

सर्वाजित बोला—"तो क्या आप स्वामी शंकराचार्य की और सद्शास्त्रों की बात को ठीक न मानेंगे। क्या वह असत्य वक्ता थे।"

कबीर साहेब ने कहा "मुझे किसी के खंडन अथवा मंडन की आवश्यकता कब है। स्वामी शंकराचार्य जी किसी समय में थे, अब नहीं हैं। इसलिये वह भी असत्य ही हुये। और तुम अपने प्रमाणों से स्वयं उनको असत्य सिद्ध कर रहे हो। जब वे असत्य थे तो असत्य वक्ता भी रहे होंगे। क्योंकि गुण सदैव अपने गुणी में रहता है। फिर मैं केवल तुम्हारे आग्रहकरने पर उनको कैसे सत्वक्ता और सत्य मान लूं।"

सर्वाजित ने कहा "स्वामी शंकराचार्य का केवल शरीर नहीं रहा, वह अपनी वाणी में अब तक विद्यमान है और हम वेदान्ती उनको अकाल मूर्ति मानते हैं।'

कबीर साहब ने कहा—"फिर ऐसा क्यों नहीं कहते कि तुम वेदान्ती हो और मेरे पास वेदान्त के पक्ष को लेकर आये हो। युक्तियों और प्रमाणों द्वारा मुझे निरुत्तर करना चाहते हो कि मैं उनका मत ठीक समझूं सो तो मैं करता नहीं, इस का तो विश्वास रखो। कबीर ने आज तक कोई बात ऐसी नहीं मानी जो किसी विशेष व्यक्ति की सम्मति या मत हो। एक बात तो यह हुई।

दूसरी बात यह कि तुमको रात्रि के समय माया ने सपना दिखलाया वह माया अब नहीं रही। उसका शरीर अथवा इस भाँति कहो कि उसकी वह अवस्था अब नहीं रह गयी है किन्तु उसका संस्कार और उसका प्रभाव तो तुम्हारे हृदय में विद्यमान है। जिस प्रकार स्वामी शंकराचार्य अपनी वाणी में अब तक जीवित हैं, उसी प्रकार स्वप्न की माया भी तुम्हारे हृदय में अपने संस्कारों के कारण विद्यमान है वह गई कहाँ? तुम स्वयं अपने अस्तित्व से उसको पता दे रहे हो।"

"अब समझो कि मैं सत्य कह रहा हूँ या असत्य?"

सर्वाजित को ज्ञान हो गया। उसने कहा "भगवन्! मैंने

बड़ी भूल की मैं जान गया था कि आपकी युक्ति सबसे निराली होती है और मैं शिष्य भाव को लेकर आपकी सेवा में परमार्थ की शिक्षा प्राप्त करने आया हूं। इसलिये मेरी भूल को क्षमा कीजिये।"

कबीर साहब ने कहा "यहाँ तुमको स्वामी शंकराचार्य जी की वाणी ने भ्रम में डाल रखा है। कल तो तुम पर ऐसी मस्ती छा गई थी कि उच्च श्रेणी के अद्वैत वादी बन गये थे। और सब लोग तुम्हारी अवस्था को देखकर चकित रह गये थे अब आज तुमको क्या हो गया कि ऐसी बहकी-बहकी बातें कहने लगे। क्या तुम्हारी कल की मस्ती की अवस्था माया नहीं कही जा सकती। तुमने जिस प्रकार रात्रि में स्वप्न देखा था वैसे ही कल इस सभा में तुम्हारी विशेष आत्मिक अवस्था हो गई थी जैसी यह वैसी यह। भला दोनो में अन्तर क्या रहा! किस का विश्वास किया जाएगा।'

सर्वाजित खिसियाना हो गया परन्तु खिसियानेपन के साथ उसमें नम्रता और दीनता थी। वह कबीर साहेब के चरणों पर गिर पड़ा।

कबीर साहेब बोले—"सुनो सर्वाजित! जो भूल तुम कर रहे हो वही भूल समस्त वाचक ज्ञानी प्रतिदिन किया करते हैं उन्होंने केवल झूठी और शब्दों की टेक पकड़ रखी है। वह शब्द के गोरख धन्धे को न तो छोड़ते हैं और न छोड़ना चाहते हैं। प्राचीन महात्माओं ने विशेष उपाय, विशेष परिभाषा और विशेष युक्तियों से दृष्टि को ऊंची बनाने का प्रबन्ध किया था, परन्तु यह तो शब्दों के ही जाल में फंस रहे हैं इनसे छुटकारा कैसे हो। 'शब्द जालम् महा जालम्!' यह शास्त्रों की ही तो वाणी है और तुम भी उनके सदृश्य शब्दों के भ्रम जाल में अब तक पड़े हो। लाख पक्ष को दृढ़ करो, लाख पक्षपाती

बनो, लाख युक्तियों से काम लो परन्तु जिस समय किसी अनुभवी के सामने वार्तालाप करोगे वह अपनी बातों से तुम्हारी बातों को काट देगा और तुमको निरुत्तर होना पड़ेगा। अनुभवी पुरुष के सामने युक्तियों से काम नहीं चल सकता। हां, चूंकि अनुभवी पुरुष शास्त्राथों को केवल बालकों का खेल समझते हैं इसलिये वे उनकी ओर ध्यान तक नहीं देते और यह अपनी मूर्खता से यह समझ बैठते हैं कि हम जो कुछ कर रहे हैं और सच्चा मान रहे हैं वही सच है। अब तक तुम को किसी अनुभवी से पाला नहीं पड़ा था। अब तक तुम घट पट और घटाकाश, मठाकाश के अटपट्ट में लटपट होकर सटपट करते रहे हो। इसको छोड़ो, सच्चे मार्ग पर आ जाओ और तथ्य का साक्षात करो। इन शब्दों के झगड़े बखेरे में क्या धरा है। और इनसे लाभ ही क्या है। कोई आत्मवादी बनता है कोई मायावादी। वास्तविक अर्थ में इनको आत्मा और माया का अब तक पता नहीं है और पता कैसे होता। इनके सिर पर तो पक्ष औ. पक्षपात का भूत सवार है। जब कोई मन्त्र जानने वाला स्याना मिले तो भूत उतरे। इसी प्रकार मैंने उस दिन तुमको समझा दिया था कि आस्तिकता और नास्तिकता के शब्द भी बिल्कुल संशय जनक है। जैसे ये वैसे ही वह। जैसे उदई वैसे भान, न इनके पूंछ न उनके कान।

सर्वजित ने कहा—भगवन्! आप सच कह रहें हो। अब मुझे इस माया की अवस्था और उसका रूप समझा दीजिये। आप किसको माया कहते हो?'

कबीर साहब बोले—मैं इस प्रकार तुमको न समझाऊँगा तुम्हारी ही बातों से तुम्हारे समझाने का प्रबन्ध करूंगा। जो साधारण मनुष्य मेरे पास आते हैं उन्हें तो मैं साधारण रीति

से भक्ति भाव में लगा देता हूं किन्तु जो लोग पंडिताई का अहंकार लेकर मेरे पास आते हैं, मैं उनके निर्बल अंगों को दबाकर उन्हीं के हथियार से उनको पराजित करता हूं। अब यदि तुमको माया के रूप के समझने की इच्छा है तो तुम मेरे प्रश्नों का उत्तर दो और तुम्हारे अपने ही उत्तर तुमको स्वयं समझाते चले गे और भ्रम के दूर हो जाने से मार्ग सीधा और सुगम होता जाएगा।'

सर्वाजित ने कहा – "फिर आप प्रश्न कीजिए। मैं जो समझता हूँ, निवेदन करूंगा परन्तु अब मुझे दृढ़ विश्वास हो गया है कि मैं आपके सामने अबोध बालक से अधिक योग्यता नहीं रखता और बालक के भावों को दबाने को सन्त अच्छा नहीं समझते।"

कबीर साहब ने कहा "तुम्हारी कोई बात तर्क से खाली नहीं होती। पंडिताई का संस्कार भला कहाँ जाय! यहाँ भी तुमने मुझे बात-बात में उपदेश दे ही दिया और सन्तपने के कर्तव्य का स्मरण करा ही दिया अच्छा मेरी दृष्टि इस समय तुम्हारे हृदय पर है। बालक को सब लोग प्यार करते हैं और सन्त भी उन्हें अपनी दया का पात्र समझते हैं अब तुम मुझ को यह बताओ कि संस्कृत के कोष में साया की क्या विवेचना की गई है और वह किस धातु से बना है।"

सर्वाजित बोला—"यास्क मुनि ने अपने निरोक्त नामक कोष में बताया है कि 'म' शब्द का अर्थ है मापना और 'य' शब्द का अर्थ है पैमाना (नपना) जिससे कि माप की जाती है। यह इसके शब्दार्थ हैं और इसके भावार्थ अनेकों हैं उनमें से एक बुद्धि भी है।

कबीर साहब ने उत्तर दिया –"बस इसी एक शब्दार्थ और

भावार्थ की आवश्यकता थी। इस अर्थ में स्पष्ट प्रकट है कि जिस पैमाने से किसी वस्तु का नाप लिया जाता है या उसका अनुमान किया जाता है वह माया है और यह माया कोई और वस्तु नहीं है किन्तु बुद्धि ही है। बुद्धि के अतिरिक्त माया का कोई नाम नहीं है। इससे तुम्हारा संशय दूर हुआ या नहीं।'

सर्वाजित बोला "नहीं ! क्योंकि इसके भावार्थ अभी अनेकों रह गये हैं।'

कबीर साहेब बोले—"तब उनको भी कह डालो। यदि इस एक अर्थ से तुम सन्तुष्ट नहीं हुये तो अनेकों का भी उच्चारण करो।

सर्वाजित ने कहा " माया के शब्दार्थ और भावार्थ यह है (१) कौतुक (२) जादू (३) दुरात्मा (४) धोखा (५)छल (६) भ्रम (७) मानुषिक बुद्धि (८) लक्ष्मी (९) बुराई (१०) उत्पति (११) दया (१२) नीति (१३) राजनीति (१४) दार्शनिक भ्रम-(१५)ब्रह्मा (१६)ईश्वर (१७) जगत का उपादान कारण(१८) बुद्ध भगवान् की माता(१९)जादूगरणी स्त्री

कबीर साहब मुस्कराये—"बहुत अच्छा ! तुमने अच्छा किया कि सारे अर्थ वर्णन कर दिये ! इन समस्त शब्दों के भावार्थ के भीतर माया के सारे रूप विद्यमान हैं यदि एक-२ की व्याख्या की जायेगी तो अधिक समय लगेगा, इसलिये मैं केवल इस समय इसके एक अर्थ 'बुद्धि' कर लेता हूँ इस बुद्धि के अन्तर्गत सब कुछ आ जाता है। माया केबल बुद्धि का ही नाम है। और संसार में जो कुछ बुरा भला होने जा रहा है वह इसी बुद्धि के काम का परिमाण है। यह माया है और अब इसके विषय में जो प्रश्न तुम्हें करना हो वह कर चलो। मैं उनका उत्तर दूंगा।"

# "मनुष्य बनो" ( हिन्दी मासिक पत्र ) समाचार पत्र (केन्द्रीय) अधिनियम १९५६ नियम ८ फार्म ४ के अनुसार आपेक्षित आवश्यक सूचना

| | | |
|---|---|---|
| १—प्रकाशन का स्थान | : | अलीगढ़ |
| २—प्रकाशन अवधि | : | मासिक |
| ३—मुद्रक का नाम | : | श्रीमती सुधा मीतल |
| क—राष्ट्रीयता | : | भारतीय |
| ख—पता | : | शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़ । (उत्तर प्रदेश) |
| ४—प्रकाशक का नाम | : | श्रीमती सुधा मीतल |
| राष्ट्रीयता | : | भारतीय |
| पता | : | शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़ । |
| ५—सम्पादक का नाम | : | श्रीमती सुधा मीतल |
| राष्ट्रीयता | : | भारतीय |
| पता | : | शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़ |
| ६—स्वत्वाधिकारी | : | श्रीमती सुधा मीतल |
| संरक्षक | : | परमदयाल फकीरचन्द जी महाराज |

७—मैं सुधा मीतल घोषित करती हूं कि उपर्युक्त विवरण मेरी जानकारी और विवरण के अनुसार सही है ।

दिनाङ्क १५ नव०, १९८८

सुधा मित्तल

प्रकाशक के हस्ताक्षर

मिलने का पता :—
'मनुष्य बनो' कार्यालय
शिव भवन, लेखराज नगर, [illegible]
अलीगढ़–२०२००१ (उ० प्र०)

अवैतनिक सहायक सम्पादक :
महेशचन्द्र मीतल
सम्पादक, व्यवस्थापक व प्रकाशक :
श्रीमती सुधा मीतल

ग्राहक संख्या— 170

श्रीमान Sri Chilwar Narsimhulu
Book - Seller
Vs PO. Banswada
Nizamabad - AP.

Regd. No. L-ALG. 28

मुद्रक : श्रीमती सुधा मीतल, दातादयाल प्रिंटर्स, लेखराजनगर, अलीगढ़।